International Journal of Applied Research 2017; 3(4): 171-173

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(4): 171-173
www.allresearchjournal.com
Received: 26-02-2017
Accepted: 27-03-2017

डॉ. शैलजा भट्ट
एस.एस. जैन सुबोध पी.जी., स्वायत्तशासी) महाविद्यालय, रामबाग सर्किल, जयपुर, भारत

Correspondence
डॉ. शैलजा भट्ट
एस.एस. जैन सुबोध पी.जी., स्वायत्तशासी) महाविद्यालय, रामबाग सर्किल, जयपुर, भारत

वर्तमान समाज में 'रामचरितमानस' की प्रासंगिकता

डॉ. शैलजा भट्ट

प्रस्तावना

नानापुराणनिगमागं सम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि[1] की उद्घोषणा करने वाले तुलसी ने 'रामचरितमानस' में वेद, पुराणों, स्मृतियों में उद्गीरित धर्म के सार रूप उदात्त जीवन मूल्यों को प्रस्थापित करने की चेष्ठा की है। तुलसी का समूचा सत्प्रयत्न मानव को मानव धर्म सिखाने में लगा है। मानव धर्म का अनुपालन करने वाला मनुष्य ही वास्तव में एक उत्कृष्ट एवं आदर्श परिवार, एक आदर्श समाज और एक आदर्श राष्ट्र का निर्माण कर सकता है। नैतिकता के 'चाक' पर ही तुलसी के आदर्श पात्रों का रूप गढ़ा है। ये सभी पात्र स्वानुशासित हैं और अपने–अपने धर्म का दृढ़ता पूर्वक निर्वाह करते दृष्टिगत होते हैं। धर्म का स्थूल रूप से दो प्रकार से विभाजन हो सकता है, एक तो है उपासना–पद्धति दूसरी है जीवन–शैली। सुन्दर जीवन जीने के लिए व्यक्ति को कैसी जीवन–शैली अपनानी चाहिए इस विषय में प्राचीन मनीषी, चिन्तकों और विचारकों ने विस्तार से चर्चा की है।[2], जिसे कहीं–कहीं सदाचार की संज्ञा भी दे दी गई है।[3] समाज और उसकी एक इकाई परिवार में मनुष्य को पारस्परिक सौहार्द्र, सौमनस्य, शान्ति और सुव्यवस्था बनाये रखने के लिए कतिपय गुणों यथा–धैर्य, क्षमा, दमन, अस्तेय, शुचिता, इन्द्रिय, निग्रह, विद्या, सत्य और अक्रोध आदि को धारण करना अत्यन्त आवश्यक है जिसे मनु ने धर्म के सर्वमान्य लक्षण के रूप में स्वीकारा है।[4]

मानव के सभी आदर्श पात्र इन सबका समुच्चय हैं। तुलसी ने मानस के उत्तरकाण्ड में अपने महाकाव्य के नायक राम के मुख से जिस धर्म–रथ[5] की चर्चा कराई है उसमें परिगणित गुण केवल शत्रु–विजय या मोक्ष–प्राप्ति हेतु ही नहीं हैं अपितु इन गुणों को धारण करने वाला व्यक्ति निःसन्देह ही एक आदर्श परिवार का निर्माता बन सकता है। क्षमा, कृपा, समत्व, धैर्य, सन्तोष, विरक्ति, निश्च्छलता, दान, शील और संयम ये सब के सब गुण व्यक्ति को अधिकार प्राप्ति से अधिक कर्तव्य की ओर प्रेरित करते हैं, परस्पर प्रेम के नैरन्तर्य की सुरक्षा कवच के लिए सहिष्णुता का पाठ सिखाते हैं, और त्यागमयी वृत्ति को बढ़ावा देते हैं। ऐसे गुणी, प्रेमी और उदार हृदय व्यक्ति यदि किसी वृहत् परिवार अर्थात् समाज का मुखिया बनता है तो वह समाज भी परस्पर प्रेम और विश्वास के मूल्यों का ही अनुपालन करता है। इसीलिए तो 'यथा राजा तथा प्रजा' के नियम का अनुपालन करती हुई राम की प्रजा में 'सब नर करहिं परस्पर प्रीती, चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति'[6] का स्पृहणीय भाव है जहाँ छल–कपट का कोई स्थान नहीं– 'सब गुनग्य पण्डित सब ग्यानी, सब कृतग्य नहिं कपट सयानी।'[7]

जिस परिवार में 'मातृ देवो भव,' 'पितृ देवो भव,' 'आचार्य देवो भव' के पूज्य और विनत भाव संवहित हो वहाँ आश्चर्य नहीं कि पुत्र अपने दिवस का प्रारंभ 'मातु पिता गुरु नावहिं माथा[8] से करता हुआ मन–वचन–कर्म की पवित्रता के साथ माता–पिता की प्रसन्नता हेतु संकल्पबद्ध हुआ कह उठेगा–

> धन्य जनमु जगतीतल तासू। पितहिं प्रमोदु चरित सुनि जासू।।
> चारि पदारथ कर तल ताकें। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें।।[9]

यही नहीं, सुनु जननी सोई सुत बड़ भागी। जो पितु मातु चरन अनुरागी[10] की उद्घोषणा के साथ उनके प्रति अखण्ड श्रद्धाभाव रखेगा। राम का समूचा जीवन माता–पिता तथा गुरु की आज्ञा–पालन व उनके चरित्र को निर्दोष भाव से देखने का रहा है। यह उनके स्वभाव की अद्भुत सहिष्णुता व संतोषी वृत्ति का परिचायक है। राम स्वयं तो कर्त्तव्यनिष्ठ, आज्ञापालक, विनत व श्रद्धावान हैं ही अपने भाइयों को भी वैसा ही होने की प्रेरणा देते हैं।[11,12,13]

यह सच है कि जिस परिवार में जनक–जननी के प्रति निष्कपट प्रेम, श्रद्धा व विश्वास के ऐसे पूत संस्कार होंगे, वहाँ न तो किशोरावास्था में संतान के उद्दंड या उच्श्रृंखल होने की संभावना रहेगी और न ही माता–पिता के वृद्ध होते ही उन्हें असहाय, रुग्ण व भारस्वरूप मानते हुए उनकी अवहेलना

करने या 'वृद्धाश्रम' का रास्ता दिखाने की भावना। वास्तव में सहिष्णुता, सेवा, सम्मान की भावधारा नैतिकता के द्वारा स्वयं को नियंत्रित और स्वानुशासन से ही उदित हो सकती है और 'प्रसन्नतां या न गताभिषेक तस्तथा न मम्ले वनवास दुःखतः'[14] के चरित्र का गठन करती है। यही उदात्त भाव पिता के आदेश को शिरोधार्य कर 'पिता दीन्ह मोहि कानन राजू, जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू'[15] कहते हुए बड़ी सहजता से वनवास को स्वीकृति दे देता है। आज जहाँ अधिकांश परिवारों में धन, सत्ता या सम्पत्ति गृह–कलह का कारण बन रही है, बेटा पिता से सम्पत्ति के लिए उलझ पड़ता है, भाई–भाई का गला काटता है वहाँ ऐसे स्वार्थी, लोलुप और मोह–जलधि में डूबते लोगों के लिए राम और भरत का त्याग तथा लक्ष्मण का सेवा–भाव 'प्रकाश–स्तंभ' बनकर अडिग खड़ा है। यह राम ही हैं जो बिना किसी प्रश्न–प्रतिप्रश्न या विरोध के परंपरा से प्राप्त राज्य को छोड़ते ही नहीं, दूषित परम्परा का प्रश्न–चिह्न भी लगाते हैं–

'बिमल बंस यह अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू।'[16]

इसके पीछे राम की संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते[17] की भावना काम कर रही है। वस्तुतः त्याग और समता के ये भाव ही भाई–भाई के हृदय में परस्पर प्रेम की अविरल धारा प्रवाहित करने के कारक बने हैं। एक ओर राम हैं कि बड़ी सहजता से समूची सत्ता को भरत को हस्तान्तरित करना चाहते हैं और दूसरी ओर भरत हैं कि अनीति से अनायास प्राप्त सत्ता–सुख उन्हें स्वीकार्य नहीं। वे तो तुलसी के शब्दों में 'चलत पयादें खात फल पिता दीन्ह तजि राजु'[18] तुरंत राम को प्रत्यावर्तित करने चल पड़ते हैं। दोनों के मन में 'त्यक्तेन भुञ्जीथा' की पावन भावना है घोषणा करने वाले तुलसी ने 'रामचरितमानस' में वेद, पुराणों, स्मृतियों में उद्गीरित धर्म के सार रूप उदात्त जीवन मूल्यों को प्रस्थापित करने की चेष्ठा की है। तुलसी का समूचा सत्प्रयत्न मानव को मानव धर्म सिखाने में लगा है। मानव धर्म का अनुपालन करने वाला मनुष्य ही वास्तव में एक उत्कृष्ट एवं आदर्श परिवार, एक आदर्श समाज और एक आदर्श राष्ट्र का निर्माण कर सकता है। नैतिकता के 'चाक' पर ही तुलसी के आदर्श पात्रों का रूप गढ़ा है। ये सभी पात्र स्वानुशासित हैं और अपने–अपने धर्म का दृढ़ता पूर्वक निर्वाह करते दृष्टिगत होते हैं। धर्म का स्थूल रूप से दो प्रकार से विभाजन हो सकता है, एक तो है उपासना–पद्धति दूसरी है जीवन–शैली। सुन्दर जीवन जीने के लिए व्यक्ति को कैसी जीवन–शैली अपनानी चाहिए इस विषय में प्राचीन मनीषी, चिन्तकों और विचारकों ने विस्तार से चर्चा की है।[2], जिसे कहीं–कहीं सदाचार की संज्ञा भी दे दी गई है।[3] समाज और उसकी एक इकाई परिवार में मनुष्य को पारस्परिक सौहार्द्र, सौमनस्य, शान्ति और सुव्यवस्था बनाये रखने के लिए कतिपय गुणों यथा–धैर्य, क्षमा, दमन, अस्तेय, शुचिता, इन्द्रिय, निग्रह, विद्या, सत्य और अक्रोध आदि को धारण करना अत्यन्त आवश्यक है जिसे मनु ने धर्म के सर्वमान्य लक्षण के रूप में स्वीकारा है।[4] और 'इदं न मम' की उपरामता। इसीलिए तो तुलसी के शब्दों में, 'परम पेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई'[19] के रूप में प्रेम की अक्षुण्णताा बनी रह पाई है। इस प्रेम के पीछे एक और कारक तथ्य है वह है– परस्पर विश्वास। जहाँ भरत 'सिसपन ते परिहरेउँ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू[20] की मिठास की दृढ़ रज्जु पकड़े हैं तो वहीं राम भी 'भरतहिं होई न राजमदु विधि हरिहर पद पाई'[21] के विश्वास पर पूर्ण आश्वस्त हैं। आज भी जो परिवार परस्पर प्रेम और विश्वास की डोर पकड़ ले, टूट नहीं सकता। अधिकांश संयुक्त परिवारों में बिखराव का कारण संदेह, असहिष्णुता, स्वार्थ व द्वेष की भावना ही है। आज भी जहाँ राम सा त्याग, लक्ष्मण सी सेवा व निश्छल प्रेम और भरत सा विश्वास बचा है– परिवार टूटने से बच गया है।

पति–पत्नी के मध्य प्रेम, समर्पण व निष्ठा का भाव ही स्पृहणीय है। रामचरितमानस में राम–सीता, शिव–पार्वती, शंकर–सती, अत्रि अनुसुइया इसके अन्यतम उद्धरण हैं। ये दम्पति दुःख–सुख, हानि–लाभ दोनों में ही एक दूसरे के सहभागी बने हैं। राम के वन–गमन के समय सीता ने जिसके, 'पिता जनक भूपाल मनि, ससुर भानुकुल भानू'[22] हैं, राज प्रसाद के भोगों को छोड़ने में एक क्षण भी नहीं लगाया है। उसका तो सीधा सा प्रश्न है– 'मै सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहिं उचित तप मो कहुँ भोगू।'[23]

वह कंदमूल फल खाकर, गिरि–कन्दराओं को भी प्रसाद मानकर सुखी रहने को तत्पर है। यही भाव विवाह–संस्था को स्थायी बनाये रखने में सहायक हैं जहाँ पति–पत्नी दोनों ही त्यागमयी वृत्ति से एक दूसरे के सहायक बन जाते हैं। भारतीय संस्कृति में विवाह केवल ऐन्द्रिय तृप्ति के लिये किया गया एक समझौता नहीं है, एक पावन धार्मिक संस्कार, है जहाँ अग्नि को साक्षी रखकर पति–पत्नी जीवन भर एक साथ रहकर अनेक सांसारिक दायित्व परिपूरित करने के लिए संकल्पबद्ध होते हैं। जहाँ केवल सुख ही सुख भोगने की आतुरता और स्वार्थपरता नहीं अपितु जीवन संघर्ष में कंधे से कंधा मिलाकर एक दूसरे का साथ देने का संकल्प भी है। आज अपने देश में यह परम्परा पाश्चात्य अपसंस्कृति के अंधे अनुकरण के फलस्वरूप ह्रासोन्मुख है और अब तो हाल ही में महाराष्ट्र सरकार द्वारा 'लिव इन रिलेशनशिप' पर विचार करने की बात से तो इस संस्था को ही ध्वस्त करने की दिशा में पहल है। जनक के द्वारा 'पुत्री पवित्र किए कुल दोऊ' सुजस ध्वल जगु कह सब कोऊ'[24] कहकर अपनी पुत्री के कार्यों की सराहना और 'तापस वेष जनक सिय देखी। भयउ पेमू परितोषु विसेषी'[25] सदृश संतोष की प्रतिक्रिया उन धनी और अविवेकी माता–पिता को एक स्वस्थ संदेश दे जाती है, जो अपनी संतान के थोड़े से कष्ट या संकट में ही उसकी ससुराल में अनुचित हस्तक्षेप करते हैं। यहीं नहीं संतान को अविवेकी परामर्श देकर कलह के बीज बोते हैं या उनके वैवाहिक जीवन को ही ध्वस्त कर डालते हैं। तलाक का निर्णय भी दोनों पक्ष की असहिष्णुता का ही परिणाम है।

अरण्यकाण्ड में अनुसुइया द्वारा दिया गया सीता का उपदेश[26] आज की दिशा–रहित युवा पीढ़ी को बहुत कुछ कह जाता है। यह उज्जवल संस्कृति का जगमगाता दिनमान है जिसके आलोक में उच्श्रृंखलता रहित, विकृति मुक्त समाज झिलमिलाता है। विचारों की ऐसी उज्जवलता, चारित्रिक दृढ़ता केवल स्त्री पक्ष में ही हो यह तुलसी को स्वीकार्य नहीं राम, शिव, लक्ष्मण सदृश सभी सत्पात्र इस निष्ठा का निर्वाह करते दृष्टिगत होते हैं, जहाँ न उन्हें शूर्पणखा का खुला आमंत्रण ही डिगा सका है और न कामदेव की कुचेष्टाएँ ही। इसीलिए तुलसी की उद्घोषणा है–

एक नारी व्रत रत सब सब झारी, ते मन वच क्रम पति हितकारी।[27]

तुलसी का समाज ऐसे मुखिया के हाथ संरक्षित है जो विवके से अपने सभी पक्षों की रक्षा कर रहा है।[28] तुलसी के समाज में 'उदर भरै सोई धर्म सिखावहिं'[29] को कहीं स्थान नहीं है, यहाँ तो सदाचरण न्याय और नीति के मणिरत्न सर्वत्र बिखरे हैं।

तुलसी कृत रामचरितमानस अपने युग की अपेक्षाओं की प्रतिपूर्ति के साथ–साथ चिरंतन शाश्वत मूल्यों का संवाहक भी है। निःसन्देह यह मानवीय मूल्यों से सम्पृक्त एक विलक्षण और उदात्त कृति है। विवेक के निकष पर खरे उतरे अपने जीवन को सार्थकता प्रदान करने वाले उन सिद्धान्तों और नियमों को यहाँ खुला समर्थन प्राप्त है, जिनके अनुपालन द्वारा उन सिद्धान्तों और नियमों को यहाँ खुला समर्थन प्राप्त है, जिनके अनुपालन द्वारा मनुष्य–मनुष्य कहलाने का अधिकारी बनता है। 'मानस' एक ऐसा मंगल–कलश है, जिसमें नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर व्यष्टि एवं समष्टि दोनों के लिए ही मंगलमयी भाव–राशि का पावन गंगा जल लबालब भरा है। सत्य, प्रेम, त्याग, परोपकार, न्याय, कर्त्तव्यनिष्ठा, शान्ति और सहअस्तित्व की भावना से अनुप्राणित मानव एक आदर्श व्यक्ति, एक आदर्श परिवार, एक आदर्श समाज, एक आदर्श राष्ट्र और एक आदर्श विश्व की

संकल्पना को जीवंत रूप प्रदान कर सकता है। ये वे अमर जीवन मूल्य हैं जिनकी आवश्यकता किसी भी समाज को पहले भी थी, आज भी है और आगे भी रहेगी। मानस की नैतिकता के आलोक में आज भी बाजारवादी स्वार्थी संस्कृति जनित कुण्ठा, संत्रास, संदेह, विद्वेष, द्विधा और असंतोष में जी रहे समाज को एक सार्थक दिशा प्राप्त हो सकती है। 'मानस' के प्रति डॉ. बलदेव मिश्र का यह कथन सर्वथा सत्य है कि 'ऐसे काव्य के अध्ययन, परायण, मनन और पठन से हमारा केवल मनोरंजन ही नहीं होता, वरन् यह तो हमें जीवन जीने की दृष्टि प्रदान करता है'।[30]

तुलसी के मानस में सर्वत्र अधिकारों से पूर्व दायित्व का अनुपालन है, परस्पर त्याग, सौहाई और समर्पण की अनुगूँज है, स्व–सुखान्वेषण से पूर्व परहितार्थ चिन्तन का मंगल वर्षण है। तुलसी के ये मूल्य और स्थापनाएँ शाश्वत होने के कारण ही आज के युग से उसे जोड़ती हैं और अपनी उपादेयता सिद्ध करती हैं इनके ही परप्रेक्ष्य में आज केवल और केवल भौतिक उन्नति के लिए संघर्षरत, येन–केन विधि अर्थोपार्जन की वृत्ति से पगलाये निरंतर असंतोष, तनाव में जी रहे, अधीर समाज की व्याकुलता का स्थायी समाधान 'मानस' में मिल सकता है।

संदर्भ संकेत

1. रामचरितमानस, बालकाण्ड, श्लोक सं. 7 (मोटा टाइप, भाषानुवादसहित) गीताप्रेस, गौरखपुर, द्वितीय संस्करण, संवत् 2019, पृ. 2।
2. अहिंसा सत्यमक्रोधस्तपो दांन दमो मतिः। अनसूयाप्यमात्सर्यमनीर्ष्या शीलमेव च। महाभारत, 12/109/12।
3. वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वयस्य च प्रियमात्मनः। एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।। मनुस्मृति 2/12।
4. धृतिः क्षमता दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।। मनुस्मृति 2।
5. सुनहु सखा कह कृपानिधाना, जेहिं जय होई सो स्यन्दन आना।
   सौरज धीरज तेहि रथ चाका, सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।
   बल विवेक दम परहित धोरे, छमा कृपा समता रजु जोरे।
   ईस भजनु सारथी सुजाना, बिरति चर्म संतोष कृपाना।
   दान परसु बुध सक्ति प्रचंडा, बर बिग्यान कठिन कोदण्डा।
   अमल अचल मन त्रोन समाना, सम जम नियम सिलीमुख नाना।
   कवच अभेद विप्र गुरु पूजा, एहिं सम विजय उपाय न दूजा।
   सखा धर्ममय अस रथ जाके, जीत न कहँ न कतहुँ रिपु ताकें।
   महा अजय संसार रिपु, जीति सकई सो वीर।
   जाके अस रथ होइ दृढ, सुनहु सखा मति धीर। रा.च.मा., लंकाकाण्ड, पृ. 781
6. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, 20/2।
7. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, 20/8।
8. रा.मा.वि. बालकाण्ड 204/7।
9. रा.मा.वि. अध्योयाकाण्ड 45/1।
10. रा.मा.वि. अयोध्याकाण्ड 40/4।
11. मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहि सुभायँ।
    लहेउ लाभु जिन्ह जानकर, नतरु जनम जग जायँ, मानस, अयो.का.दोहसं. 70।
12. अस जियँ जानि सुनहु सिख भाई, करहु मातु पितु पद सेवकाई।। वहीं, 70।
13. मोर तुम्हार परम पुरुषाथु स्वारथु सुजसु धरम परमारथु। पितु आयसु पालिहिं दुइ भाई, लोक वेद भल भूप भलाई।। अयो. का. 314/3–4।
14. रामचरितमानस, अयो.का.श्लोक 2।
15. रामचरितमानस, अयो.का.श्लोक 52/6।
16. रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, 9/7।
17. ऋग्वेद दशम मण्डल 191/सूक्त–2।
18. रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, 222।
19. रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, 240/2।
20. रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, 259/6–7।
21. रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, 23।
22. रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, 58।
23. रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, 66/8।
24. रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, 286/2।
25. रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, 286/1।
26. जग पतिव्रता चरि विधिं अहहीं, वेद पुरान संत सब कहहीं।
    उत्तम के अस बस मन माहीं, सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं।।
    मध्यम परपति देखइ कैसें, भ्राता पिता पुत्र निज जैसें।
    धर्म बिचारि समुझि कुल रहई। सो निकृष्ट त्रिय श्रुति अस कहई।
    बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई।
    पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई।
    रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, 4/11–6।
27. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, 21/8।
28. मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान कहुँ एक।
    पालइ पोषइ सकल अंग, तुलसी सहित बिबेक।।
    रामचरिमानस, अयोध्याकाण्ड, 315।
29. रामचरितामनस, उत्तरकाण्ड, 98/8।
30. काव्य–मनीषा, पृ. 123।